



2007:सीजीएचसी:9817

प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

दाण्डिक विविध याचिका 31/2007

ज्ञान चंद्र अग्रवाल

बनाम

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

आदेश

आदेश हेतु दिनांक – 23 – 06 – 2006 को सूचीबद्ध

सही / –

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश







2007:सीजीएचसी:9817

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

दाण्डिक विविध याचिका 31/2007

याचिकाकर्ता :- ज्ञान चन्द्र अग्रवाल, पिता स्वर्गीय महावीर अग्रवाल, उम्र करीब 48 साल,

निवासी 52/15, नेहरू नगर, पूर्व भिलाई, जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़ ।

बनाम

उत्तरवादी :- केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, शिविर: भिलाई, सेक्टर-9, भिलाई, जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़ ।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दाण्डिक विविध याचिका

उपस्थित :

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता : श्री संजय के. अग्रवाल ।

सी.बी.आई. के अधिवक्ता : श्री शैलेन्द्र दुबे ।

आदेश
(07.05.2007)

सुनील कुमार सिन्हा न्यायाधीश,



(1) “क्या किसी व्यक्ति को, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अंतर्गत अनिवार्य जमानत का आदेश मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया है और जिसने आदेश के अनुसरण में लंबे समय तक जमानत- बंधपत्र प्रस्तुत नहीं किया है और इस बीच आरोप-पत्र दायर किया गया है, उसे बाद में पूर्व आदेश के आधार पर जमानत- बंधपत्र प्रस्तुत करने पर ऐसी जमानत पर रिहा किया जा सकता है ? ” यह एक छोटा प्रश्न है जिसे इस याचिका में विचारार्थ उठाया गया है ।

(2) संक्षिप्त तथ्य यह है कि यह याचिकाकर्ता पुलिस थाना, भिलाईभट्टी में पंजीकृत अपराध संख्या 76/2004 में भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468, 469 और 471 के अंतर्गत दंडनीय अपराध का अभियुक्त है । सबसे पहले, उन्होंने उक्त अपराध में अग्रिम जमानत के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे उच्च न्यायालय ने 18 अगस्त, 2004 को खारिज कर दिया और मामले की जाँच केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (संक्षेप में "सी.बी.आई") द्वारा करने का निर्देश दिया । परिणामस्वरूप, मामला को सीबीआई को स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ इसे अपराध संख्या आर.सी.10(ए)/ 04/ सी.बी.आई. / जबलपुर, (केस डायरी संख्या 44) के रूप में दर्ज किया गया । याचिकाकर्ता को उक्त अपराध संख्या में गिरफ्तार किया गया । उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष धारा 439 द.प्र.सं. के अंतर्गत नियमित जमानत के लिए एम.सीआर.सी. संख्या 3266/2005 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया । उक्त आवेदन को उच्च न्यायालय ने दिनांक 16.02.2006 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया । इसके बाद, चूँकि अभियोजन पक्ष समय पर आरोप पत्र दाखिल नहीं कर सका, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा धारा 167(2) द.प्र.सं.



के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया । यह आवेदन 10.03.2006 को विशेष मजिस्ट्रेट (सी.बी.आई.) के समक्ष सुनवाई के लिए आया, जिन्होंने इसे स्वीकार कर लिया और धारा 167(2) के तहत एक आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता को अनिवार्य जमानत पर रिहाई के लिए 50,000/- रुपये की दो ऋणशोधक्षम प्रतिभूति बंधपत्र और 1 लाख रुपये का निजी मुचलका भरने का निर्देश दिया गया । यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ता ने मजिस्ट्रेट (सी.बी.आई.) द्वारा दिए गए जमानत आदेश का पालन नहीं किया क्योंकि उसने उक्त आदेश के अनुसार जमानत बंधपत्र प्रस्तुत नहीं किया, क्योंकि याचिकाकर्ता के अनुसार, इस बीच, उसे पुलिस थाना भिलाईभट्टी, जिला दुर्ग में दर्ज अपराध संख्या 77/2004 में भी गिरफ्तार किया गया था, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 468, 469 और 471 के तहत दंडनीय एक अन्य अपराध के लिए था, जिसके लिए उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत आवेदन(एम.सी.आर.सी. संख्या 2528/2006) दायर किया गया था । अपराध संख्या 771/2004 में नियमित जमानत की मांग करने वाली उक्त जमानत याचिका उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.11.2006 को खारिज कर दी गई थी । उक्त बर्खास्तगी आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (दाण्डिक) संख्या 6485/2006 (ज्ञान चंद्र अग्रवाल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य) के तहत एक विशेष अनुमति याचिका दायर की । उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका दिनांक 15.12.2006 को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जहाँ यह निर्देश दिया गया कि याचिकाकर्ता को 25,000/- रुपये की दो प्रतिभूति बंधपत्र और उतनी ही राशि का निजी मुचलका जमा करने पर जमानत पर रिहा किया जाएगा, ताकि अधीनस्थ न्यायालय संतुष्ट हो सके ।



(3) याचिकाकर्ता के अनुसार, उसने अपराध संख्या 77/2004 में जमानत बंधपत्र भर दिया है और उस मामले में आवश्यक आदेश भी पारित किए गए थे। हालाँकि, उसे जेल से रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि पहले के अपराध संख्या 76/2004 (परिवर्तित संख्या आर.सी.10(ए)/04/सी.बी.आई./जबलपुर, (केस डायरी संख्या 44. सी.बी.आई.) में भी उसकी आवश्यकता थी क्योंकि उसने उक्त मामले में धारा 167(2) द.प्र.सं. के तहत मजिस्ट्रेट (सी.बी.आई.) द्वारा पारित आदेश के अनुसार जमानत बंधपत्र नहीं भरा था ।

(4) इसके बाद, दिनांक 19.12.2006 को, याचिकाकर्ता ने मजिस्ट्रेट के दिनांक 10.03.2006 के आदेश के अनुसार जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किया, जिसे मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर स्वीकार नहीं किया कि उस समय तक 30.03.2006 को सीबीआई ने मामले में आरोप पत्र दायर कर दिया था और अब, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आरोप पत्र दायर होने के बाद, याचिकाकर्ता को द.प्र.सं. की धारा 167(2) के तहत पारित दिनांक 10.03.2006 के आदेश के अनुसार रिहा नहीं किया जा सकता ।

(5) मजिस्ट्रेट (सी.बी.आई.) द्वारा पारित आदेश को विशेष न्यायाधीश (सी.बी.आई.), रायपुर के समक्ष दायित्व पुनरीक्षण संख्या 2/2007 में चुनौती दी गई थी । विद्वान विशेष न्यायाधीश ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए पुनरीक्षण को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता लंबी अवधि बीत जाने के बाद, विशेष रूप से, जब इस बीच, सी.बी.आई. द्वारा आरोप पत्र पहले ही दायर किया जा चुका है, द.प्र.सं. की धारा



167(2) के तहत 10.03.2006 को पारित पूर्व आदेश के आधार पर रिहा होने का हकदार नहीं है । दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित इन आदेशों के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने यह दाण्डिक विविध याचिका दायर की है ।

(6) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रघुबीर सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (1986) 4 एस.सी.सी. 481 और असलम बाबालाल देसाई बनाम महाराष्ट्र राज्य (1992) 4 एस.सी.सी. 272 के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों का हवाला देते हुए तर्क दिया कि धारा 167(2) द.प्र.सं. के तहत पारित आदेश के अनुसार जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने की कोई सीमा नहीं है और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा उसके पक्ष में पारित पूर्व आदेश के आधार पर अनिवार्य जमानत पर रिहाई के लिए दायर किए गए जमानत पत्रों को स्वीकार न करना उचित नहीं था । उन्होंने आगे तर्क दिया कि एक बार अभियुक्त के पक्ष में अनिवार्य जमानत का आदेश दिए जाने के बाद, बाद में आरोप पत्र दाखिल करना कहीं भी आड़े नहीं आता है और धारा 167(2) के अधिदेश का सम्मान करते हुए जमानत बंधपत्र स्वीकार किया जाना चाहिए ।

(7) इसके विपरीत, सी.बी.आई. की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2001) 5 एससीसी 453 के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए तर्क दिया कि अनिवार्य जमानत पर रिहा होने का अधिकार बाद में आरोप पत्र दाखिल करने पर समाप्त हो जाता है यदि अभियुक्त द्वारा इसका लाभ नहीं उठाया जाता है,



खासकर जब रिहाई का आदेश उसके पक्ष में पारित किया गया था, लेकिन उसने उक्त आदेश के अनुसार जमानत- बंधपत्र प्रस्तुत नहीं किया था ।

(8) मैंने पक्षों के अधिवक्ता को विस्तार से सुना है और विविध दांडिक याचिका के अभिलेखों का भी अवलोकन भी किया है ।

(9) रघुबीर सिंह मामले (पूर्वोक्त) मामले में, धारा 167 के नए प्रावधान के प्रभाव पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कंडिका 20 के तहत यह टिप्पणी की कि नए प्रावधान का प्रभाव यह है कि यदि जाँच एजेंसी 60 दिनों के भीतर जाँच पूरी करने में विफल रहती है, तो आरोपी व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने का अधिकार होगा । जांच एजेंसी की चूक के कारण धारा 167(2) के प्रावधान के तहत जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को, सहिता के अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत, उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए, वैधानिक रूप से रिहा माना जाता है, जो परंतुक में ही उपबंधित है । सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इसका अर्थ है कि, सबसे पहले, बंधपत्र और प्रतिभूति से संबंधित प्रावधान लागू होते हैं । धारा 441, जमानत पर रिहा किए जाने वाले व्यक्तियों द्वारा, प्रतिभूति के साथ या बिना, बंधपत्र के निष्पादन का प्रावधान करती है । बंधपत्र से संबंधित प्रावधानों में से एक धारा 445 है जो न्यायालय को बंधपत्र निष्पादित करने के लिए अपेक्षित व्यक्ति द्वारा बंधपत्र निष्पादित करने के बदले में प्रतिभूति के साथ या उसके बिना धनराशि जमा करने का अधिकार देता है । यदि बंधपत्र निष्पादित हो जाता है (या नकद जमा स्वीकार कर लिया जाता है), तो धारा 442(1) के अनुसार, आरोपी व्यक्ति को



जमानत देने वाली न्यायालय को उस जेल के प्रभारी अधिकारी को रिहाई का आदेश जारी करना आवश्यक है जिसमें वह आरोपी व्यक्ति कैद है। धारा 441 और 442, सिविल प्रक्रिया संहिता की भाषा में, अभियुक्त व्यक्तियों की जमानत पर रिहाई के आदेशों के निष्पादन के प्रावधानों की प्रकृति की हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि महत्वपूर्ण बात यह है कि जमानत पर रिहाई का आदेश जारी होने के बाद मुचलका भरने की कोई समय सीमा नहीं है। अक्सर अभियुक्तों को जमानत पर रिहाई का आदेश जारी होने के तुरंत बाद जमानत पेश करना मुश्किल लगता है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि ऐसा अक्सर अभियुक्तों की गरीबी के कारण होता है और अक्सर ऐसा भी होता है कि विभिन्न कारणों से अभियुक्तों की ओर से प्रस्तुत प्रतिभूति न्यायालय को स्वीकार्य नहीं हो सकती हैं और ऐसी स्थिति में नई प्रतिभूति प्रस्तुत करनी होंगी। न्यायालय ने कहा कि अभियुक्तों को उनके पक्ष में जमानत पर रिहाई के आदेश के लाभ से वंचित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे तुरंत जमानत देने में असमर्थ हैं। जमानत पर रिहाई के आदेश तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि धारा 437(5) या धारा 439(2) के तहत आदेश न दिया जाए। ये दोनों प्रावधान उस मजिस्ट्रेट को, जिसने किसी अभियुक्त को जमानत पर रिहा किया है, या सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने और उसे अभिरक्षा में लेने का निर्देश देने का अधिकार देते हैं। न्यायालय ने कहा कि चूंकि धारा 167(2) के परंतुक के तहत जमानत पर रिहाई को अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत जमानत पर रिहाई माना जाता है, इसलिए धारा 167(2) के परंतुक के तहत रिहाई का आदेश भी धारा 437(5) और 439(2) के प्रावधानों के अधीन है और इनमें से किसी भी प्रावधान के तहत आदेश द्वारा इसे रद्द किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने धारा



444 के तहत प्रतिभूति बदलने का उदाहरण देते हुए कहा कि जमानत पर रिहाई का आदेश समाप्त नहीं होता है और प्रतिभूति के उन्मोचन और अभियुक्त द्वारा उस मामले में तुरंत नया जमानत पेश करने में असमर्थता के कारण उसे नकारा नहीं जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने यह सब बिहार राज्य के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के मद्देनजर कहा कि धारा 309(2) द.प्र.सं. के तहत आरोपी की अभिरक्षा में भेजने पर जमानत पर रिहाई का आदेश समाप्त हो गया। यह न्यायालय को जमानत रद्द करने का अधिकार नहीं देता। ऐसा केवल धारा 437(5) और धारा 439(2) के तहत ही किया जा सकता है। अंत में, इस कंडिका में कहा गया है कि जब किसी अभियुक्त को धारा 167(2) के प्रावधान के तहत या अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत जमानत दी जाती है, तो जमानत रद्द करने का एकमात्र तरीका धारा 437(5) या धारा 439(2) के तहत कार्यवाही करना है।

(10) सर्वोच्च न्यायालय ने संक्षेप में कहा कि धारा 167(2) के परंतुक के तहत जमानत पर रिहाई का आदेश समय बीतने, आरोप पत्र दाखिल होने या धारा 309(2) के तहत अभिरक्षा में भेजने से रद्द नहीं होता। हालाँकि, जमानत पर रिहाई का आदेश द.प्र.सं. की धारा 437(5) या धारा 439(2) के तहत रद्द किया जा सकता है। सामान्यतः, जमानत रद्द करने के आधार, मोटे तौर पर, न्याय प्रशासन की प्रक्रिया में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने का प्रयास, या न्याय प्रक्रिया से बचने या बचने का प्रयास, या उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग हैं। जहाँ अभियोजन पक्ष द्वारा 60 दिनों में जाँच पूरी न करने के कारण धारा 167(2) के प्रावधान के तहत जमानत दी गई है, आरोप पत्र दाखिल करके दोष का निवारण हो जाने के बाद, अभियोजन पक्ष इस आधार पर जमानत रद्द करने की माँग कर



सकता है कि यह मानने के उचित आधार हैं कि अभियुक्त ने एक गैर-जमानती अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करके अभिरक्षा में रखना आवश्यक है और धारा 167(2) के प्रावधान के तहत जमानत पर ऐसी रिहाई आरोप पत्र दाखिल करने के समय बीतने के साथ समाप्त नहीं होती है ।

(11) असलम बाबालाल देसाई (पूर्वोक्त) के मामले में, इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या द.प्र.सं. की धारा 167 की उपधारा (2) के प्रावधान के तहत निर्धारित अवधि के भीतर जाँच पूरी न करने पर दी गई जमानत, उसके बाद किसी भी समय केवल चालान पेश करने पर रद्द की जा सकती है, सर्वोच्च न्यायालय ने रघुबीर सिंह मामले के निर्णयों और इस मुद्दे पर विभिन्न अन्य निर्णयों का हवाला देते हुए फैसला सुनाया कि एक बार जब किसी अभियुक्त को धारा 167(2) के तहत जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो उसे केवल आरोप पत्र दाखिल करने पर वापस अभिरक्षा में नहीं लिया जाएगा, बल्कि ऐसा करने के लिए विशेष कारण मौजूद होने चाहिए, इसके अलावा कि आरोप पत्र में गैर-जमानती अपराध का खुलासा होता है । सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार बशीर एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य (1977) 4 एससीसी 410 और रघुबीर मामले (पूर्वोक्त) में पूर्व में दिए गए विचारों के अनुरूप रखा ।

(12) हालाँकि, इसके बाद उदय मोहनलाल आचार्य (पूर्वोक्त) के मामले में धारा 167(2) के तहत मामले की सुनवाई करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले :



(i) "धारा 167 की उपधारा (2) के अंतर्गत, वह मजिस्ट्रेट जिसके समक्ष किसी अभियुक्त

को उस समय पेश किया जाता है जब पुलिस अपराध की जाँच कर रही हो तो अभियुक्त को ऐसी अभिरक्षा में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है जिसे मजिस्ट्रेट उचित समझे, कुल मिलाकर 15 दिनों से अधिक की अवधि के लिए ।

(ii) धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के तहत, मजिस्ट्रेट अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा के अलावा अन्यत्र अभिरक्षा में रखने की अनुमति दे सकता है कुल अवधि 90 दिनों से अधिक नहीं, जहाँ जाँच मृत्युदंड, आजीवन कारावास या कम से कम 10 वर्ष और 60 दिन की कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित हो, जहाँ जाँच किसी अन्य अपराध से संबंधित हो ।

(iii) 90 दिन या 60 दिन की उक्त अवधि, जैसा भी मामला हो, की समाप्ति पर, अभियुक्त के पक्ष में एक अजेय अधिकार उत्पन्न होता है जांच एजेंसी द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर जांच पूरी करने में चूक के कारण उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है और अभियुक्त जमानत पर रिहा होने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत प्रस्तुत करता है ।



(iv) जब किसी अभियुक्त द्वारा जमानत के लिए आवेदन दायर किया जाता है, जो कथित तौर पर, जांच एजेंसी द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर जांच पूरी करने में चूक के कारण, उसके पक्ष में अर्जित होता है तो मजिस्ट्रेट/न्यायालय को इसे तुरंत निपटाना होगा, यह संतुष्ट होने पर कि वास्तव में अभियुक्त निर्दिष्ट 90 दिनों या 60 दिनों की अवधि के लिए अभिरक्षा में रहा है और जांच एजेंसी द्वारा कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है। मजिस्ट्रेट/ न्यायालय की ओर से ऐसी त्वरित कार्रवाई अभियोजन पक्ष को अधिनियम के उद्देश्य और निर्धारित अवधि के भीतर जांच पूरी करने में जांच एजेंसी की ओर से चूक के कारण अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के विधायी जनादेश को विफल करने में सक्षम नहीं बनाएगी।

(v) यदि अभियुक्त मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार जमानत प्रस्तुत करने में असमर्थ है, तो स्पष्टीकरण -। और धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के संयुक्त पठन पर, पैरा (क) में निर्दिष्ट अवधि के बाद भी अभियुक्त की निरंतर अभिरक्षा अनधिकृत नहीं होगी और इसलिए, यदि उस अवधि के दौरान जांच पूरी हो जाती है और आरोप पत्र दायर कर दिया जाता है, तो अभियुक्त का तथाकथित अजेय अधिकार समाप्त हो जाएगा।

(vi) संजय दत्त मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति "यदि पहले से ही इसका लाभ नहीं उठाया गया है" का अर्थ यह समझा जाना चाहिए कि जब अभियुक्त आवेदन दायर करता है और निर्देश मिलने पर जमानत देने के लिए तैयार होता है। दूसरे शब्दों में, धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के पैरा (क) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर यदि



अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन दायर करता है और निर्देश मिलने पर जमानत देने की भी पेशकश करता है, तो यह माना जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अपने अजेय अधिकार का लाभ उठाया है, भले ही न्यायालय ने उक्त आवेदन पर विचार नहीं किया हो और जमानत के नियम व शर्तें नहीं बताई हों और अभियुक्त ने उन्हें प्रस्तुत नहीं किया हो ।

(13) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इस निर्णय में रघुबीर सिंह मामले, असलम मामले (पूर्वोक्त) और संजय दत्त बनाम राज्य द्वारा सीबीआई, (1994) 5 एससीसी 410 मामले में संविधान पीठ के फैसले का हवाला दिया गया है और उसके बाद बहुमत के आधार पर अंतिम परिणाम ऊपर दर्ज किया गया है ।

(14) इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर और धारा 167 के प्रावधानों के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि धारा 167 मजिस्ट्रेट को किसी अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने की अनुमति देने और अधिकतम अवधि निर्धारित करने की शक्ति देती है जिसके लिए अभियुक्त को अभिरक्षा में रखा जा सकता है । धारा 167 की उपधारा (2) का परंतुक परिणामों से संबंधित है और यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यदि जांच 60 दिनों या 90 दिनों की अवधि के भीतर पूरी नहीं होती है, जैसा भी मामला हो, तो अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा, यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और देता है, जिसे आमतौर पर बाध्यकारी जमानत कहा जाता है और इसके अलावा, उपरोक्त रिहाई को अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत उस अध्याय के प्रयोजन के लिए रिहा माना जाएगा । धारा 167 का स्पष्टीकरण-। स्पष्ट करता है कि अभियुक्त के इस अधिकार से केवल तभी इनकार किया जा सकता है



जब अभियुक्त मजिस्ट्रेट के आदेशानुसार जमानत प्रस्तुत नहीं करता है। यह प्रावधान द.प्र.सं. के अध्याय XII में जाँच को लंबा खींचने से रोकने और इस प्रकार अभियुक्त को अनिश्चित काल तक जेल में रखने से रोकने के लिए जोड़ा गया था। धारा 167 की उपधारा (2) के प्रावधान के तहत, अब मजिस्ट्रेट पुलिस की अभिरक्षा के अलावा किसी अन्य अवधि के लिए अभियुक्त को अभिरक्षा में रख सकता है, जो 90 दिनों से अधिक नहीं होगी। जहाँ जाँच मृत्युदंड, आजीवन कारावास या कम से कम 10 वर्ष और 60 दिनों की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है, जहाँ जाँच किसी अन्य अपराध से संबंधित है और ऐसी अवधि की समाप्ति पर, अभियुक्त के पक्ष में आरोप पत्र दाखिल न करने के कारण जमानत पर रिहा होने का एक अजेय अधिकार अर्जित होता है। यह इस शर्त के अधीन है कि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार जमानत बंधपत्र भरने के लिए तैयार रहना होगा और उसे प्रस्तुत करना होगा, लेकिन यदि अभियुक्त मजिस्ट्रेट के निर्देशानुसार जमानत देने में असमर्थ है, तो वैधानिक रूप से निर्दिष्ट अवधि के बाद भी अभियुक्त की निरंतर अभिरक्षा अनधिकृत नहीं होगी और यदि इस अवधि के दौरान, जाँच पूरी हो जाती है और आरोप पत्र दाखिल कर दिया जाता है, तो अभियुक्त का उक्त अजेय अधिकार समाप्त हो जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने उदय मोहनलाल आचार्य मामले (पूर्वोक्त) में निष्कर्ष संख्या 5 में यही कहा है।

(15) वर्तमान मामले में, निस्संदेह, याचिकाकर्ता के पक्ष में अजेय अधिकार तब अर्जित हो गया था जब जांच पूरी नहीं हुई थी और निर्धारित अवधि के भीतर आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था और इस कारण से, मजिस्ट्रेट (सीबीआई) ने दिनांक 10.03.2006 को



धारा 167 (2) द.प्र.सं. के प्रावधान के तहत अनिवार्य जमानत का आदेश पारित किया था। लेकिन याचिकाकर्ता को ही ज्ञात कारण से, मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले जमानत बंधपत्र, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत नहीं किए गए और अंततः उन्होंने इसे दिनांक 19.12.2006 तक प्रस्तुत नहीं किया और लगभग 9 महीने से अधिक की लंबी अवधि बीत जाने के बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 19.12.2006 को जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किया, लेकिन उस समय तक जांच पूरी हो चुकी थी और दिनांक 30.03.2006 को आरोप पत्र दायर किया जा चुका था। इसलिए, निश्चित रूप से, मजिस्ट्रेट के दिनांक 10.03.2006 के निर्देशों के अनुसार जमानत बंधपत्र दाखिल न करने के बाद, वैधानिक अवधि के भीतर आरोप-पत्र दाखिल न करने के कारण याचिकाकर्ता के पक्ष में अर्जित अजेय अधिकार दिनांक 30.06.2006 को समाप्त हो गया। मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायालय ने दिनांक 10.03.2006 के आदेश के आधार पर अनिवार्य जमानत पर रिहा करने की याचिकाकर्ता की प्रार्थना को सही रूप से खारिज कर दिया था। बदले हुए परिदृश्य में दिनांक 19.12.2006 को जमानत बंधपत्र स्वीकार कर लिया था क्योंकि उस समय तक उपरोक्त अधिकार समाप्त हो चुका था और याचिकाकर्ता को द.प्र.सं. की धारा 167(2) के तहत पारित पूर्व आदेश के आधार पर रिहा नहीं किया जाना सही था। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधता नहीं है। याचिका में कोई सार नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

सही / -
सुनील कुमार सिन्हा
न्यायाधीश



अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated By MS. SAKSHI BALI, ADV.

